महर्षि दयानन्द सरस्वती–भारतीय पुर्नजागरण का अग्रदूत

प्रतीककुमार दशरथभाई पटेल
शोध छात्र,पेसिफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर

1 दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय

दयानन्द का जन्म 12 फरवरी 1824 को मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम अंबाशंकर और माता का नाम यशोदा बाई था। उनके पिता शैव थे। बचपन में दयानन्द को दयालजी तथा मूलशंकर, दो नामों से पुकारा जाता था। दयानन्द बचपन से ही मेधावी थे। पाँच वर्ष की आयु में पढ़ना शुरू किया और कुछ ही समय में संस्कृत में अनेक मंत्र और स्तोत्र कंठस्थ कर लिये। 14 वर्ष की अवस्था में जब वे अपने पिता के साथ शिवरात्रि के जागरण में गये हुये थे तब उन्होंने देखा कि एक चूहा शिवलिंग पर चढ़कर ऊधम मचा रहा था। इस घटना से उनके मन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और वे सोचने लगे कि जब शिवजी चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकते तो वे हमारी क्या रक्षा करेंगे ? अतः उसी दिन से उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि ''मूर्ति–पूजा नहीं करूंगा और कल्याणकारी सच्चे शिव का दर्शन करूंगा।''

दयानन्द प्रारम्भ से ही चिन्तनशील थे और सांसारिक जीवन उन्हें मिथ्या लगता था। 14 वर्ष की अवस्था में जब उनके माता–पिता ने उनको वैवाहिक बंधन में बाँधने का विचार किया तो मूलशंकर चुपचाप घर से निकल पड़े। नर्मदा तट पर पहुँच कर उन्होंने पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास ले लिया। यहीं से उनके सन्यास का नाम दयानन्द सरस्वती हो गया। सन्यास धारण कर वे तीर्थ यात्रा करते–करते मथुरा पहुँचे। वहाँ उनको स्वामी विरजानन्दजी प्रज्ञाचक्षु जैसे गुरू मिल गये। उनके चरणों में बैठकर दयानन्द ने संस्कृत, व्याकरण और वेदों का गूढ़ अध्ययन किया। ढाई वर्ष के अध्ययन के बाद उनके गुरू ने गुरू दक्षिणा के रूप में यही कहा कि, ''जाओ संसार से अज्ञान का नाश करो और वेद संस्कृति का प्रसार करो।'' इसी बीच उनकी बहिन एवं चाचा का देहान्त हो गया। गौतम बुद्ध की भाँति उन्होंने समझ लिया कि ''यह संसार दुःखों का घर है।'' अतः वे सच्चे सुख की खोज में चल पड़े। अन्त में उनको बोध हुआ कि ईश्वर एक है और वहाँ तक पहुँचने का एकमात्र रास्ता सत्याचरण है।

1874 में अपने विचारों को अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखकर राष्ट्रीय एकता का प्रयास किया। 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में उन्होंने लिखा था कि, ''जो पदार्थ जैसा है, उसका उसी रूप में वर्णन करना ही सत्य का आचरण है।'' स्वामी दयानन्द ने वेदों के सच्चे ज्ञान को लोगों के सामने रखा और कहा कि, ''हम सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं।'' एक–दूसरे से छुआछूत रखना बुरी बात है। दयानन्द ने अछूतों को गले लगाने की शिक्षा देकर हिन्दू समाज की बहुत बड़ी सेवा की और इसे विघटन से बचाया। अछूतों और नारी को समाज में उच्च स्थान देने के लिये उन्होंने उनको वेद पढ़ने का अधिकार दिया। मानव समानता में उनका अटूट विश्वास था। अस्पृश्यता को मानव समाज के लिये कलंक मानते थे। बाल विवाह का विरोध कर हिन्दू विधवाओं के लिए विधवाश्रम खुलवाये और विधवा विवाह को वेदासम्मत बताया।

दयानन्द स्वभाषा, स्वधर्म एवं स्वदेशी के अपनाने को महत्वपूर्ण मानते थे। स्वदेशी भावना से वे ओत–प्रोत थे। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को देश के लिए अहितकर बताया। भारत की प्राचीन गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के आधार पर गुरूकुल खुलवाये। शिक्षा का माध्यम संस्कृत रखा ताकि लोग वेदों के मर्म को समझ सकें।

हिन्दू समाज की एकता, प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिये बम्बई में 1875 में आर्य समाज की स्थापना की गई। इसके पीछे स्वामीजी का उद्देश्य था कि हिन्दू समाज को सामाजिक बुराइयों से मुक्त कर स्वभाषा और स्वसंस्कृति को अपनाने के लिए तैयार करना। स्वामीजी का किसी धर्म से कोई विरोध नहीं था। ईसाई एवं मुसलमान धर्म द्वारा हिन्दू धर्म के बारे में मनगढ़न्त बातें फैलाने को उन्होंने डटकर विरोध किया। वे ऐसे भारत राष्ट्र का निर्माण चाहते थे जहाँ कि सभी धर्मावलम्बी अपने धर्म का पालन करते हुए दूसरे धर्मों का सम्मान करें। गोरक्षा के कार्य को वे देश की आर्थिक समृद्धि का मुख्य कार्य मानते थे। अतः उन्होंने अनेक स्थानों पर गोरक्षा क लिये भाषण दिये। अपने विचारों के प्रचार के लिए ऋग्वेदिक भाष्य भूमिका और वेद भाष्य लिखे।

2 वैदिक शिक्षा के प्रसार में दयानन्द सरस्वती का योगदान

भौतिक विज्ञान ने भौतिक जगत के अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया है। फलस्वरूप वेदान्त को नये रूप में देखने, समझने एवं निरूपित करने की आव"यकता हुई। महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और श्री अरविन्द ने यह कार्य सम्पन्न किया। महर्षि दयानन्द वेदों के ज्ञाता थे और वैदिक द"र्न ही उन्हें मान्य था। इस सम्बन्ध में श्री रमन बिहारी लाल का कथन समीचोन है कि "महर्षि दयानन्द ने वेदों की जो व्याख्या की है उसमें भी उनका विवके दृष्टिगोचर है।" स्वामी दयानन्द के अनुसार ि"क्षक और विद्यार्थी दोनों को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। स्वामी जी ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भारतीय गणराज्य के आर्यसमाज की स्थापना की। राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के शब्दों में "दयानन्द सरस्वती जी का एक महत्वपूर्ण कार्य में यह जानता हूँ कि उन्होनें वेद को सर्वोच्च सत्य घोषित करके हमारे दे"ा के लोगों में स्वाभिमान और आत्मवि"वास का भाव भरा। अंग्रेजी के प्रचार प्रसार और व्यवहार के कारण भारतीयों के मन में धीरे धीरे जो हीन भावना घर करती जा रही थी, उसे दयानन्द सरस्वती जी ने दूर किया।"

दे"ा के राजनैतिक चेतना के साथ साथ सांस्कृतिक तथा धार्मिक भावनाओं के विकास में बलिष्ठ कन्धा लगाने वालों में महर्षि दयानन्द का नाम स्मरणीय है। महर्षि दयानन्द ने जनता को अनुद्योग, आलस्य, अकर्मण्यता के स्थान पर उद्योग, परिश्रम, कर्मण्यता का पाठ पढ़ाया। स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में डॉ. राम"ाल पाण्डेय का कथन उचित ही है कि "उनका जीवन आज भी सफलता के सर्वोच्च ि"खर पर पहुंचकर वह ज्ञान ज्योति बिखेर रहा है, जिसके प्रका"ा पर संसार सब कुछ न्यौछावर करने को सन्नद्ध है।" स्वामी जी के अनुसार ि"क्षा को मात्र सूचना तक सीमित नहीं करना चाहिए। सूचना का अपने में कोई महत्व नहीं है। जो विचार जीवन निर्माण में सहायक हो, उनकी अनुभूति करना आव"यक है। उन्हीं के शब्दों में, यदि तुम केवल पांच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक ि"क्षित हो।" दयानन्द बालक को इस प्रकार की ि"क्षा देने के पक्ष में थे जिससे उसका चरित्र बने, बुद्धि का विकास हो, मानसिक शक्ति बढ़े और वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। ज्ञान योग में दयानन्द ने कहा है, "परस्पर विरोधी मतावलम्बियों के बीच भी विचारों का एक अंतः प्रवाह रहा है। अनेक विद्वतजन् एवं तुलनात्मक धर्म के अध्यवसायी इन विद्वेष एवं कलहयुक्त सम्प्रदायों में पारस्परिक समन्वय तथा समरसता लाने का प्रयास करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द पहले भारतीय दा"र्निक हैं जिन्होनें ि"क्षा को सामाजिक एवं बहुउद्दे"ीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार उन्होनें ि"क्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं कार्य दोनों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ि"क्षा के उद्दे"यों को उन्होनें मुख्य रूप से दो वर्गों में बांटा है – भौतिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास। भौतिक विकास के अन्तर्गत उन्होनें मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक सभी उद्दे"यों को समान रूप से स्थान दिया है। आध्यात्मिक के अन्तर्गत धार्मिक विकास एवं समाज सेवा को स्थान दिया है।

महर्षि दयानन्द विद्यालय को अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सहयोग की सृजनात्मक कृति मानते हैं। उन्होनें अपने विद्यालय में छात्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी उनका विचार था कि छात्र को अपनी इच्छा से कार्य करने का अवसर देना चाहिए। अध्यापक का कार्य केवल प्रेरणादायक होना चाहिए। उन्होंने भारत में वैदिक विद्यालय स्थापित किए और वैदिक शिक्षा का देश में प्रचार प्रसार किया।

दयानन्द सरस्वती 19वीं शताब्दी के सबसे महान व्यक्ति थे। मानव जीवन से सम्बन्धित ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें उन्होनें कार्य न किया हो दे"ा को राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाने, समाज में अछूतों का उद्धार करने, वर्ग विहीन समाज का निर्माण करने और संसार को वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार में योगदान दिया। वस्तुतः दयानन्द तब तक याद किये जायेगें जब तक यह भारतीय सभ्यता जीवित रहेगी। उन्होंने नये दर्शन को प्रतिपादक नहीं किया बल्कि उन्होनें प्राचीन भारतीय द"र्न को व्यवहारिक रूप दिया है। परन्तु इसे व्यवहारिक रूप देने में उनकी अपनी मौलिकता है, इसलिए आज इसे अलग द"र्न माना जाता है। उन्हीं के शब्दों में, "इसमें मुख्य कल्पना यह है कि बच्चों को जो भी दस्तकारी सिखाई जाए, उसके द्वारा उन्हें हर तरह से शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक ि"क्षा दी जाए। उद्योग की तमाम क्रियाओं के द्वारा आपको बच्चों के अन्दर जो भी अच्छा लगे उन सबको विकसित करना है और आप इतिहास, भूगोल तथा गणित के जो पाठ सिखायें, वे सब उस सदपयोग से सम्बन्धित होंगे। दयानन्द सरस्वती ने कहा है, ''बालक की शिक्षा माँ के उदर से लेकर श्मशान तक होनी चाहिए, यह विद्यालय में नहीं अपितु घर में, समाज में, खेत में, कल–कारखानों में और हर जगह व्यक्ति के लिए सीखने का क्रम जारी रखें।''

श्री दयानन्द वर्तमान युग के सर्वोत्कृष्ट साधक एवं भारतीय ऋषि परम्परा की उज्जवल कड़ी है। उनका दर्शन वैदिक और उपनिषदों के दर्शन के समकक्ष है। श्री दयानन्द के अनुसार मन तथा अन्तःकरण शिक्षक का मुख्य साधन है। उनका मत है कि शिक्षक छात्र को ज्ञान नहीं देता, वरन् वह यह सिखाता है कि विद्यार्थी स्वयं किस प्रकार ज्ञान को प्राप्त करे। श्री दयानन्द शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य के अन्तःकरण और आत्मा की शक्ति के निर्माण और विकास को मानते हैं। बालक की प्रारम्भिक शिक्षा में वह ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा पर बल देते हैं। उन्होंने शिक्षा के जिन विस्तृत उद्देश्यों का प्रतिपादन किया उनकी प्राप्ति के लिए एक विस्तृत पाठ्यचर्या भी प्रस्तुत की थी। प्राचीन–अर्वाचीन, भारतीय और पाश्चात्य, सभी उपयोगी ज्ञान एवं क्रियाओं को पाठ्यचर्या में स्थान देकर उन्होंने विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान किया है। विद्यालय में भजन, कीर्तन, ध्यान और योग की क्रियाओं को स्थान देकर भारतीयों को भारतीय बनाने के प्रयत्न के लिए वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। अनुशासन के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े मार्मिक हैं। उनकी दृष्टि में स्वेच्छा से कर्त्तव्य पालन करना ही सच्चा अनुशासन है। इस अनुशासन को नैतिकता पर आधारित कर उन्होंने इसकी प्राप्ति का सच्चा रास्ता भी बताया है। उन्होंने वैदिक विद्यालयों को केन्द्र बनाकर प्राचीन शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित किया है।

3 दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन – एक सर्वेक्षण

दार्शनिक चिन्तन और शिक्षा में कोटि का सह–सम्बन्ध होता है। दार्शनिक चिन्तन के बिना शिक्षा और शिक्षा के बिना दार्शनिक चिन्तन पंगु रह जाते हैं। यथार्थ में इन दोनों के बीच एक–दूसरे के साथ अन्यान्योश्रित सम्बन्ध होता है और दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा और दार्शनिक चिंतन के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को एक अन्य तथ्य से देखा जा सकता है। उच्च कोटि के दार्शनिक अंततः शिक्षा के विषय में भी कुछ विचार करने लगते हैं। वे इस रहस्य को समझ लेते हैं कि उनकी दार्शनिक मान्यताओं को शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और उनके आदर्शों की प्राप्ति के लिए शिक्षा की सहायता आवश्यक है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, लॉक, रूसो, बट्रेण्ड रसल तथा जॉन डी. वी. आदि दार्शनिक प्रारम्भ में दार्शनिक समस्याओं पर विचार कर रहे थे, किन्तु बाद में उन्होंने शिक्षा पर अपने विचार व्यक्त किये। उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री भी शिक्षा–दर्शन की समस्याओं पर विचार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। पेस्टालॉजी, हरबाट, फ्रोबेल, कमेंनियस, नन, किलपैट्रिक, रायबर्न, ब्रैमेल्ड आदि शिक्षाशास्त्री मूलरूप से शिक्षाशास्त्र पर विचार करते–करते शिक्षा–दर्शन की व्याख्या में तत्पर हो गये। इसीलिए जॉन डी.वी. ने कहा, ''शिक्षा–दर्शन सामान्य दर्शन का सीधा सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि दार्शनिकों ने भी अब तक यही माना है। अंततः यह दर्शन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, क्योंकि शिक्षा प्रक्रिया द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है।''

शिक्षाशास्त्री दर्शन पर विचार करता ही है। उसे समाज के आदर्शों एवं मूल्यों की खोज करनी ही पड़ती है। इसी आशय के विचार भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री डॉ. कालूलाल श्रीमाली ने व्यक्त किये हैं, उनका कथन है – ''शिक्षाशास्त्री का कार्य देश के दर्शन की पुनर्रचना करना और मूल्यों की पुनः परिभाषा करना है जिससे कि वे हमारे मूल्य परिवर्तनशील जीवन एवं विचार का स्पष्टीकरण कर सके।''

मानव सृष्टि की सर्वोच्च संरचना ह, चूंकि मानव सृष्टि का सर्वोतम प्राणी है, इसलिए मानव जीवन की पूर्णता हेतु उसके लिए जगत का ज्ञान आव"यक है। मानवेतर प्राणी अल्पकाल में अपने जीवनोपयोगी कार्यों को करने में समर्थ हो जाते हैं। इन कार्यों के लिए उन्हें किसी प्रकार की औपचारिक f"ाक्षा की आव"यकता नहों पड़ती परन्तु जन्म के समय मानव f"ा"ाु की जितनी दयनीय व पराश्रित अवस्था होती है वैसी अन्य किसी प्राणी के f"ा"ाु की नहीं होती। मानव f"ा"ाु अपने जनोपयोगी कार्यों हेतु अनके वर्षों तक अपने माता पिता व परिवार पर निर्भर रहता है। शै"ावावस्था से लेकर युवावस्था तक परिवार के मध्य उसका f"ाक्षण चलता रहता है। इस प्रकार से अन्य प्राणियों से मानव की इस भिन्नता में ही मानव का उत्कर्ष निहित है।

आज हमारे दे"ा के समाज का उत्तरोतर नैतिक पतन होता जा रहा है। भौतिक जीवन को महत्ता देने वाले लोग अपने निहित स्वार्थों की दौड़ में अपने कर्तव्यों, सिद्धान्तों और आद"ाों को विस्मृत कर चुके हैं। आज चारों तरफ अव्यवस्था, अराजकता और असमानता का साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा है जो प्राचीन भारतीय परिदृ"य में कहीं भी उपलब्ध नहीं है, इस असमानता को देखते हुए यह आव"यक हो जाता है कि हम अपनो प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, द"ान विधि तथा नैतिक एवं सामाजिक f"ाक्षा का अवलोकन करें। आधुनिक f"ाक्षा प्रणाली ज्ञान तक ही सीमित है और इसमें भी परिणाम का आग्रह है। इस समय सम्पूर्ण f"ाक्षा व्यवस्था में नैतिक एवं धार्मिक प्रवृतियों का कोई स्थान दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनु"ाासनहीनता, उदण्डता, कर्तव्यहीनता और कदाचारिता की भावना इसी का परिणाम है। पा"चात्य संस्कृति का ऊपरी आवरण या आकर्षण की मृततृष्णा हमें आकर्षित करती है। इस प्रवाह में भारतीय संस्कृति तथा परम्परा, संसार में अपना गौरव खो रही है इसलिए आज दे"ा के समक्ष f"ाक्षा की पुर्नरचना का प्र"न उपस्थित है। अगर मानव को सुसभ्य, सुंस्कृत, दक्ष नागरिक तथा उसके जन्म जात संस्कारों, विचारों में परिवर्तन, परिमार्जन एवं परिवर्धन लाना है तो उच्च स्तरीय अध्ययन और गुणवता हेतु कटिबद्ध f"ाक्षा के लिए विद्यालया का

निर्मलीकरण होना समीचीन है। क्योंकि वर्तमान ि"क्षा व्यवस्था पूर्णतया दोषमुक्त है अतः इस दोष युक्तता को समाप्त करने हेतु विद्यार्थियों को दा"र्निक ि"क्षा की आव"यकता अधिक प्रतीत होती है।
ि"क्षा को द"र्न से बड़ी सहायता मिलती है, "द"र्न हमें यह बताता है कि किस प्रकार का लक्ष्य वांछनीय है, किस प्रकार का लक्ष्य अवांछनीय है ? किस दृष्टिकोण में क्या गुण है ? इसकी जानकारी द"र्न से मिलती है। इस प्रकार दा"र्निक चिन्तन ि"क्षा को नई दि"ा प्रदान करता है।"

डॉ. एनी बेसेन्ट का विचार है, "धार्मिक एवं नैतिक ि"क्षा की हमें उतनी ही आव"यकता है जितनी शारीरिक एवं मानसिक ि"क्षा की। धार्मिक एवं नैतिक ि"क्षा के अभाव में हमारी पा"ाविक प्रवृतियों का परि"ोधन असम्भव होगा।" प्रसिद्ध ि"क्षा"ास्त्री कामेनियस का विचार है, "ि"क्षा केवल प्रतिभा"ाली और धनी लोगों के बच्चों के लिए नहीं है, वह तो लड़के – लड़की, भद्र–अभद्र, धनी–निर्धन, शहरी–ग्रामीण, भवनों और झोपड़ियों में रहने वाले सभी लोगों के लिए समान रूप से आव"यक है। जिसके पास बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियां हैं, उसे ि"क्षा से वंचित रखना ठीक नहीं है।"

ि"क्षा के द्वारा ही व्यक्ति ने आदिम अवस्था से चलकर शनैः शनैः आग की खोज की, पहिये का आविष्कार किया और अनगिनत खोजों एवं आविष्कारों के परिणामस्वरूप अंतरिक्ष शटल और कम्प्यूटरीकृत सूचना तकनीकी के युग में जी रहा है। भारतीय वाÈमय में ि"क्षा को पवित्र किया माना गया है, न हि ज्ञानेन सदृ"ं पवित्रमहि विद्यते' कहकर भगवान कृ'ण ने ज्ञान को पवित्र घोषित किया है। महाभारत में कहा है, 'नास्ति विद्या समं चक्षुर्नास्ति सत्य समं तपः' अर्थात् विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं होता। इस प्रकार से भारतीय संस्कृति के अनुसार ि"क्षा व्यक्ति और समाज की उन्नति का सबल माध्यम है। महात्मा गांधी ने अपनी ि"क्षा प्रणाली के लक्ष्य की चर्चा करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है– ""ारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों की उपस्थिति ही ि"क्षा है।" प्राचीन भारत में ि"क्षा मूल रूप से अध्यात्म (धार्मिक) एवं नैतिकता पर आधारित थी। ि"क्षा से ही व्यक्तित्व का विकास होता है, मूल प्रवृतियों का नियंत्रण, मार्गान्तीकरण तथा उदातीकरण होता है, प्रौढ़ जीवन की तैयारी होती है, सामाजिक भावना का विकास होता है और व्यावसायिक कु"ालता उत्पन्न होती है। ि"क्षा भौतिक सम्पदा प्रदान करती है और आत्मनिर्भर बनाती है। राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करते हुए नेतृत्व के लिए प्रि"क्षित करती है, साथ ही भावनात्मक एवं राष्ट्रीय अखण्डता की भावना को जागृत करती है। सामाजिक दायित्व की भावना का बोध कराती है और इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक प्रतिमानों का संरक्षण, हस्तान्तरण, परि"ोधन और नवसृजन भी करतो है। इस प्रकार ि"क्षा के द्वारा मानव का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है, जैसे पौधे का विकास कृषि द्वारा और मनुष्य का विकास ि"क्षा द्वारा होता है।

ि"क्षा द"र्न की सहायता के बिना अग्रसर नहीं हो सकती। ि"क्षा कला द"र्न"ास्त्र की सहायता के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकती। द"र्न और ि"क्षा एक दूसरे पर अन्यान्योश्रित है। प्रत्येक शैक्षणिक प्र"न नि"्चित रूप से जीवन द"र्न से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक व्यक्ति का एक नि"्चित जीवन द"र्न होता है, चाहे वह सत्य हो या असत्य। ि"क्षा के उद्दे"य, पाठ्यक्रम, ि"क्षा विधियां, अनु"ासन की समस्या पाठ्य पुस्तकों का चुनाव आदि सब उन व्यक्तियों के जीवन द"र्न पर आधारित होते हैं, जो समाज में ि"क्षा के लिए उत्तरदायी हैं। अतः हम ि"क्षा का सही उपयोग तब तक नहीं कर सकते जब तक हम दा"र्निकों के जीवन का अवलोकन न करें। द"र्न"ास्त्र की सहायता से ही शैक्षणिक प्र"नों का हल खोजा जा सकता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि ि"क्षा सम्बन्धी समस्याओं का ि"क्षा–द"र्न की दृष्टि से विवेचन करता है।